Class- XII
Philosophy
Dr. S. K. Singh
Mob.- 9431449951

ऋत

→ ऋत एक नैतिक सिद्धान्त है। विभिन्न क्षेत्रों में विश्वव्यापी सामंजस्य या व्यवस्था को वैदिक ऋषि 'ऋत' नाम से अभिहित करते हैं।

→ ऋत के उत्पत्ति के संबंध में ऋग्वेद में कहा गया है - 'ऋतं च सत्यं च आभीद्धात् तपसः अजायत' अर्थात् गहन तपस्या से ऋत और सत्य उत्पन्न हुये और उसके बाद संपूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ।

→ 'ऋत' का शाब्दिक अर्थ है - उचित या सही अथवा नैतिक सद्मार्ग है।

→ 'ऋत' जगत की शाश्वत, अलंघनीय व नैतिक व्यवस्था का नाम है, जिसके संचालक एवं संरक्षक वरुण हैं। वरुण को 'गोपा ऋतस्य' कहा गया है।

→ ऋत से संपूर्ण ब्रह्माण्ड संचालित होता है। यह व्यवस्था का नियम है। ऋत का पालन प्रकृति के सभी अवयव, देवी-देवता भी करते हैं।

→ ऋतजात :- सभी देवी-देवता ऋत को स्वीकारते हैं तथा तदनुरूप आचरण करते हैं। इसलिये देवताओं को ऋतजात कहा जाता है।

→ ऋत के तीन आयाम या क्षेत्र हैं - (1) प्राकृतिक नियम, (2) नैतिक नियम और (3) कर्मकाण्डीय नियम।

→ प्राकृतिक नियम के रूप में ऋत का आशय विश्व की व्यवस्था एवं सामंजस्य से है।

→ नैतिक नियम के रूप में ऋत सदाचार के मार्ग / नैतिक व्यवस्था को इंगित करता है। इसी नियम से कर्म-नियम का सिद्धान्त निकलता है जिसका आशय है - अच्छे कर्मों का अच्छा व बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलता है - कृतप्रणाश व अकृताभ्युगम।

→ कर्मकाण्डीय नियम के रूप में ऋत धार्मिक क्रियाओं के नियम को बतलाता है।

→ ऋत के कारण ही दिन-रात, ऋतु-परिवर्तन, कारण-कार्य आदि व्यवस्था है जिससे ब्रह्माण्ड में सामंजस्य है।

Scanned with CamScanner

P3

ऋण एवं यज्ञ

→ मनुष्य इस संसार में अपने अस्तित्व के लिये एवं स्वयं के कल्याण तथा उत्थान ~~के लिये~~ हेतु प्रकृति के कई चीजों से सहायता प्राप्त करता है। वैदिक परम्परा के अनुसार मनुष्य जिससे भी सहायता लेता है उसका ऋणी होता है और इन ऋण से मुक्ति के लिये उसे यज्ञ करना होता है।

→ ऋण पाँच है – देव ऋण, ऋषि ऋण, पितृ ऋण, अतिथि ऋण तथा भूत ऋण तथा इनसे मुक्ति के लिये पाँच यज्ञ क्रमशः है – देव यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ तथा भूत यज्ञ।

→ गृहस्थाश्रम में व्यक्ति यज्ञ कर ऋण से मुक्त होता है। ब्रह्मचर्याश्रम के उपरांत व्यक्ति गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तथा ~~ऋणमुक्त होकर~~ यज्ञों को करके ऋण-मुक्त होता है और तदुपरांत वह वानप्रस्थ आश्रम में और अन्त में संन्यास आश्रम में जीवन जीता है।

ऋण

→ देव ऋण :- देवताओं का प्रत्येक व्यक्ति ऋणी होता है क्योंकि जल, वायु, भूमि आदि के माध्यम से देव-गण जीवन में सुख-समृद्धि देते हैं। अतः व्यक्ति देवताओं का ऋणी होता है।

→ ऋषि ऋण :- ऋषियों या गुरुओं से व्यक्ति ज्ञान अर्जित करता है अतः वह ऋषि या गुरु का ~~ऋणि~~ ऋणी होता है।

→ पितृ ऋण :- माता-पिता जन्म देते हैं तथा भरण-पोषण करते हैं; इसलिये व्यक्ति माता-पिता का ऋणी होता है।

~~→ विभिन्न अवसर~~

→ अतिथि ऋण :- विभिन्न अवसरों पर व्यक्ति अनेक व्यक्तियों से सहायता लेता है, अतः वह ~~उनका~~ अन्य व्यक्तियों का ऋणी होता है।

→ भूत ऋण :- पशु-पक्षियों तथा वनस्पतियों से भी व्यक्ति के जीवन में नाना-प्रकार की सुख-सुविधाएं प्राप्त होती है, इसलिये वह सभी पशु-पक्षियों एवं वनस्पतियों का भी ऋणी होता है।

यज्ञ

→ देव-यज्ञ :- मनुष्य देवताओं का आभारी या ऋणी है, अतः व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि उसके पास जो कुछ है उसमें से कुछ अंश देवताओं को समर्पित करके कृतज्ञता प्रकट करे। इसी हेतु व्यक्ति ~~अग्नि~~ अग्निहोत्र या अग्नि में आहुति कर देव ऋण से मुक्त होता है।

→ ब्रह्म यज्ञ :- वेद-वेदान्त का स्वाध्याय और अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है, ब्रह्मयज्ञ द्वारा व्यक्ति ~~वैदिक~~ ज्ञान-विज्ञान को एक ~~पीढ़ी से~~ पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्थानान्तरित करता है जिससे ज्ञान-विज्ञान का विकास एवं सुरक्षा होता है।

Scanned with CamScanner

→ पितृ-यज्ञ :- गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिये व्यक्ति विवाह करता है तदनुपरान्त पितृऋण से मुक्ति के लिये वंश-परम्परा को आगे बढ़ाता है तथा माता-पिता के मृत्योपरांत श्राद्ध-कर्म करता है। श्राद्ध कर्म के अवसर पर दिवंगत पितरों को तर्पण एवं पिण्ड दान करता है।

→ अतिथि यज्ञ :- इसे 'नृ यज्ञ' भी कहते हैं। गृहस्थाश्रम में व्यक्ति अतिथि अर्थात् बिना तिथि के द्वार पर आये हुये मेहमान का सम्मान, स्वागत और सेवा करता है और अतिथि ऋण से मुक्त होता है।

→ भूत यज्ञ :- यज्ञ में प्रतिदिन पकाये गये अन्न से भूतों को बलि देना भूत यज्ञ है। ऐसा माना जाता है कि जो आत्माएं मुक्त नहीं हुई हैं वे इसी संसार में भटकती रहती हैं और मनुष्य को प्रभावित करती हैं। इन प्रेतात्माओं को एवं इसके अतिरिक्त अन्य जीवित जानवरों, कीड़े-मकोड़ों, अपाहिज मनुष्यों, अस्पृश्य जातियों को भोजन देना एवं वृक्ष वनस्पतियों का संरक्षण करना भूत-यज्ञ है।

⇒ वैदिक परम्परा में ऋण एवं यज्ञ की अवधारणा सामाजिक-नैतिक व्यवस्था के साथ ही सांसारिक जीवन में व्यवस्था कायम रखता है। यह 'सर्वभूतहिते रतः' की भावना को भी प्रोत्साहित करता है।

— Dr. S. K. Singh
Dept. of Philosophy
R. N. College, Hajipur
Mob./WhatsApp No. — 9431449951.

Scanned with CamScanner